शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 दिसम्बर 2013

संत कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना
(गुरु ग्रंथ साहिब में संगृहीत वचनों के संदर्भ में)

डॉ.शीतल राठौर
हिन्दी विभाग
द्वारा विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन, म.प्र., भारत

शोध संक्षेप

संत कबीर उन महान संत साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने मानव-कल्याण के लिए समन्वयवादी दृष्टि अपनाई। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों व विसंगतियों से समाज को छुटकारा दिलवाने के लिए उन्होंने विभिन्न प्रचलित धर्मों, जातियों, वर्गों, संप्रदायों तथा धारणाओं में समन्वय करने का प्रयास किया। साथ ही कबीरदास जी ने तत्कालीन समाज व्यवस्था में व्याप्त अनेकानेक रूढ़ियों और परंपराओं को ज्ञान की कसौटी के आधार से मिथ्या सिद्ध किया। आमजन में फेली अज्ञानता को दूर करने के लिए उन्होंने अनेक जगह पर कठोर शब्दों का प्रयोग भी किया। संत कबीर के वचनों को गुरुग्रंथ साहिब में सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में गुरुग्रंथ साहिब में संगृहीत वचनों के संदर्भ में कबीर की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डाला गया है।

कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना

संत कबीर के काव्य में समन्वय के बहुत से सूत्र यत्र-तत्र अभिव्यक्त हुए हैं। कबीर के काव्य में हिन्दू, मुस्लिम एकता की भावना परिलक्षित होती है। उन्होंने मानव मात्र की एकता की घोषणा करते हुए कहा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान हैं। संत कबीर का कथन है:

हिन्दू तुरक का साहिबु एक, कह करै मुलां कह करै शेख"1

अर्थात शेख और मुल्ला चाहे जो कह ले, परंतु हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही ईश्वर की संतान हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू-मुसलमान को एक कहना उस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देकर दोनों धर्मों के बीच की खाइयों को भरने का काम किया। समन्वयवादिता के माध्यम से धार्मिक मतभेदों व झगड़ों को मिटाने में संत कबीर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने ज्ञान व प्रेम, राम व रहीम, योग व भक्ति तथा विभिन्न मतों में समन्वय किया है। परस्पर विरोधी धारणाओं का मिलन व समन्वय उनके काव्य की विशिष्ट उपलब्धि है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "कबीरदास ऐसे ही मिलन बिंदु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है, तो दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है, तो दूसरी ओर भक्ति, जहां एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, तो दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चैराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और

परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"2

संत कबीर ने स्वयं को राम और अल्लाह की संतान माना है। वे कहते हैं कि हे प्रभु तूने जितने औरतों और मर्दों की रचना की है, ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। कबीर तो राम और अल्लाह दोनों का ही पुत्र है और ये सभी हमारे गुरु और पीर है:

एते अउ रत मरदा साजे ए सभ रूप तुम्हारे

कबीरु पूंगरा राम अलह का सभ गुर पीर हमारे"3

उन्होंने हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव को दूर करने के लिए सभी मनुष्यों को उस एक परमात्मा की संतान माना। वह परमात्मा के लिए राम शब्द का प्रयोग करते थे। बेशक यह 'राम' दशरथ सुत न होकर घट-घट रमने वाले राम हैं। संत कबीर ने आध्यात्मिक सत्य के द्वारा जाति और कुलगत अभिमान एवं उचं-नीच की भावना को भ्रममात्र घोषित करके सामाजिक साम्य के आदर्श की प्रतिष्ठा की। वे कहते हैं कि हमने माया की ओर से अपना मन उलटा कर अपनी जाति और कुल परंपरा को भुलाकर त्याग दिया है। हम तो अब शून्य और सहज भाव में ही ओतप्रोत हो गए हैं। अब हमारा किसी से कोई झगड़ा नहीं रहा, क्योंकि हमने पंडित और मुल्ला दोनों को छोड़ दिया है।

उलटि जाति कुल दोउ बिसारी, सुन सहज महि बुनत हमारी

हमर झगरा रहा न कोउ, पंडित मुलां छाडे दोउ"4

मध्ययुग में पंडित, मुल्ला, काजी, सुल्तान ही जन-साधारण को पथभ्रष्ट कर रहे थे। ये जनता के मन में भ्रम पैदा कर रहे थे और उंच-नीच के भाव जाग्रत कर रहे थे। अतः कबीर ने इन काजी, मुल्ला और पंडित को भी फअकार लगाते हुए उनके कर्तव्यों का बोध कराया और जनसाधारण को इनसे दूर रहने की सलाह दी। कबीर ने माना कि जब ईश्वर की दृष्टि में उंच-नीच, जात-पात, अमीर-गरीब का कोई अंतर नहीं है, तो मनुष्य इन व्यर्थ के भेदभाव में क्यों पड़ा है ? मनुष्य अज्ञानता के कारण उंच-नीच के भेदभावों में ही पड़ा रहता है, जबकि प्रभु की शरण में जाने पर उंच-नीच, जात-पात के भेदभाव मिट जाते हैं।

कबीर के काव्य में विद्रोह की भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है। उन्होंने जहां भी बुराई देखी, भेदभाव देखा उसका विरोध किया। वे कड़ेर शब्दों में पंडित, काजी, मुल्ला, सुल्तान को फअकार लगाकर उन्हें अपने कर्तव्य का बोध कराते हैं। डा॔.विजयेंद्र स्नातक ने भी भक्त कबीर के काव्य में अभिव्यक्त विद्रोह का कारण उनकी मानव सेव और सुधार की भावना को माना है। उनके अनुसार, "कबीर न तो समाज सुधारक की भांति किसी सामाजिक जीवन दर्शन का उपदेश देने आए थे और न किसी धर्म या जाति में एकता स्ाि◌ापित करना उनका उद्देश्य था, किंतु जब उन्होंने अपने चारों ओर धर्म के नाम पर मानव कल्याण के बीच भेदभाव की खाई देखी, छल-कपट का व्यवहार देखा, तो वे अपने दुःख-सुख को छोड़ मानव पीड़ा को दूर करने में मनोयोग से जुट गए।"5

इस संदर्भ में डा॔.वासुदवसिंह ने भी यह माना है कि समाज में फेली अराजकता व मानवता के पतन के प्रति भक्त कबीर की पीड़ा ही उनके काव्यगत विद्रोह का कारण है। उनके शब्दों में, "वस्तुतः कबीर ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया था, वह न वेदों में दिखाई पड़ा, न कुरान में, उसका समाधान न पंडित के पास था, न काजी मुल्ला के पास। उसका स्वरूप न योगियों में था, न सहजयानियों में। इसलिए उन्होंने इन सबको अस्वीकार कर दिया और ऐसे मार्ग का अनुसंधान किया जो मानव जीवन का उन्नायक था।"6

अतः संत कबीर के संपूर्ण काव्य में मानव कल्याण की भावना दिखाई देती है। उन्होंने कर्मकाण्डों, बाह्यांडबरों को व्यर्थ बताया, क्योंकि उस युग में लोग बाह्याडम्बरों एवं कर्मकाण्डों में बहुत विश्वास करने लगे थे। अतः कबीर ने इन कर्मकाण्डों एवं बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुए सच्चे हृदय से प्रभु की भक्ति करने को कहा। जो लोग माथे पर तिलक लगाकर और हाथ में माला लेकर, मन में कपट रखकर प्रभु भक्ति का दिखावा करते, ऐसे लोगों को कबीर ने बड़ी फअकार लगाई है। वे कहते हैं कि पूजा के लिए न तो मैं पत्ते तोड़ता हूं, और न ही किसी देवता की पूजा करता हूं, क्योंकि प्रभु की भक्ति के बिना सारी सेवा निष्फल है।

तोरउ न पाती पूजउ न देवा

राम भगति बिनु निहफल सेवा"7

कबीर का मानना था कि ईश्वर को प्राप्त करना है तो उसे अपने हृदय में ही खोजो, क्योंकि ये बाहरी प्रपंच तो दिखावा है। प्रभु भक्ति के साथ-साथ उन्होंने कर्म करने पर भी बल दिया है। अर्थात वे कहते हैं कि मनुष्य को प्रभु भक्ति के साथ जीविका अर्जन भी करना चाहिए। प्रभु की भकित जंगल में जाकर तपस्या करने से या भूखे रहकर नहीं हो सकती। अतः कबीर कहते हैं कि मनुष्य को कर्मप्रधान बनना चाहिए। कबीर स्वयं कर्मयोगी थे, जो जीवनपर्यंत कड़े परिश्रम द्वारा साधारण जुलाहे का कार्य करते हुए जीविका अर्जन करते रहे। निम्न वर्ग से संबंधित होने पर भी स्वाभिमान और आत्मविश्वास से सिर उंचा उठाकर समाज के उच्च वर्ग से टककर लेते रहे। उनके जीवन दर्शन में लौकिक जीवन की अवहेलना नहीं है। वह नाम जपते हुए काम करने का संदेश देते हैं। वह कहते हैं कि मरणोपरांत हमारे साथ कुछ भी नहीं जाएगा। इस कारण उनकी आवश्यकताएं भी बहुत कम हैं। परमात्मा के साथ उनका आत्मीय संबंध है। अतः एक बेटे की तरह दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे प्रभु से मांग करते हैं:

दुई सेर मांगउ चूना, पाउ घीउ संगि लूना

अध सेरु मांगउ दाले, मोकउ दोनउ बखत जिवाले"8

और यदि प्रभु उनकी इन बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते तो भक्त कबीर उन्हें चुनौती देते हुए उनका नाम न जपने की धमकी देते हैं:

भूखे भगतत न कीजै, यह माला अपनी लीजै"9

इस प्रकार संत कबीर एक ऐसे समाज-सुधारक के रूप में सामने आए, जिन्होंने समाज की प्रत्येक बुराई को दूर करने का प्रयास किया। उनके

अनुसार प्रभु में अटूट आस्था ही मुक्ति का सही मार्ग है। भक्त के लिए केवल विषय वासनाओं से रहित होकर प्रभु भक्ति ही उसे परमात्मा तक पहुंचाने का मार्ग दर्शाती है। उन्होंने बहुदेववाद का भी खण्डन किया और निर्गुण राम की उपासना पर बल दिया।

निष्कर्ष

वे जो कुछ भी कहते व्यावहारिक कसौटी पर इतना कसा हुआ होता कि जनसाधारण द्वारा सरलता से आत्मसात कर लिया जाता। उन्होंने कभी भी शास्त्र ज्ञान का विरोध नहीं किया बल्कि उन्होंने शास्त्रों की आड़ में अपना स्वार्थ साधने वाले तथाकथित पंडितों का विरोध किया। उस समय ढोंगी साधु, काजी, पीर आदि अधिक संख्या में मिलते थे। इसलिए संत कबीर को आवश्यकता पड़ी कि वे इनके वास्तविक रूप का स्पष्टीकरण करें। वस्तुतः वे सत्य के प्रचारक थे। वे सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करके भेदभाव और अंधविश्वास से मुक्त समाज की रचना करना चाहते थे। अतः संत कबीर का संपूर्ण काव्य लोकमंगल पर आधारित है।

सन्दर्भ

1 गुरुग्रंथ साहिब पृष्ठ 1158

2 कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 182

3 वही, पृष्ठ 1349

4 गुरुग्रंथ साहिब पृष्ठ 1158

5 कबीर, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 131, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,

6 हिन्दी संत कबीर: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, डा॔.वासुदेव सिंह, पृष्ठ 222

7 गुरुग्रंथ साहिब पृष्ठ 1158

8 वही पृष्ठ 656

9 वही पृष्ठ 656